एक तुलनात्मक अध्ययन

"भारतीय दर्शन एवं जैन दर्शन"

लेखक :- वैद्य मुरलीधर श्रीमाली "साधक"

मत मतान्तरों का यह जनक संसार सभ्यता की स्पर्धा में धावक की भांति गतिमान होता दिखलाई दे रहा है। इसका निर्णायक चिन्ह या बिन्दु अथवा स्थान कहां है? कोई नहीं जानता। फिर भी सर्वोपरि या शक्ति के प्रदर्शन के विवाद में उलझने के लिये स्वयं को तनाव अशान्ति, आशंका, भय, क्लेश, के बन्धन में ही एक क्षणिक सुख की अनुभूति प्राप्त करना चाहता है। बढ़ती हुई अनाधिकार चेष्टाऐं व भौतिक धुन्ध में आध्यात्मिक प्रज्ञा का ग्रास होता जा रहा है। इसी कारण आध्यात्मिक मार्ग दर्शन का महत्त्व घटता जा रहा है। धर्म और कर्तव्य लगातार और अधिकांश दूर होता दिखाई दे रहा है या फिर पाखण्डियों के चंगुल में जा रहा है। इस संभावित दुर्दशामें दर्शन कहीं उपहास बन कर न रह जाय? इसके मर्म को समझने के लिये अधिकांश लोगों के पास समय ही नहीं है। हिंसक प्रवृत्तियां दूषित राजनिति का यह बढ़ता हुआ ताण्डव कब तक चलेगा? कहना कठिन है। यह निश्चित है कि विनाश के कगार से पुनः लौटने के लिये प्रयास आज भी हमारा दर्शन कर रहा है, प्रेरणा दे रहा है। ऋषि-मुनियों के द्वारा प्रशस्त सुखद मार्ग के लिये आज भी पश्चिमी जगत आशा लगाये हुअे है। अपने अन्तर्मन को शान्ति एवं सन्तोष का प्रश्न देने के लिये इस और देख रहे है। परन्तु झुठे स्वाभिमान की चट्टान बाधा बनी हुई है। आज वे ही दुर्गुण पूर्वो जगत में संक्रमण होते जा रहे है। विडम्बना की मृग मरीचिका के भ्रम में भटकता हुआ मानव सन्तोष या आनन्द के छोर से अनभिज्ञ होकर मरुभूमि के शुष्क वातावरण में दूर दूर तक आशा की दृष्टि लगाये बैठा है। राग द्वेष लोभ मोह के कुहरा में विवेक रुपी नाव भटकने लगी है। इस अन्धकार में दर्शन रुपी दिपक को जो ओझल सा हो गया है, पुनः प्रकाशमान होने की क्षमता पैदा करनी होगी। भ्रमित को सही दिशा देने की क्षमता मात्र हिन्दु (भारतीय) दर्शन में हीं है। चौंकिये मत, हिन्दु दर्शन किसी जाति या धर्म विशेष का नहीं है। वसुधैव कुटुम्बकम का उद्‌घोष करने वाला, जिसका मूल मंत्र है — सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु, निरामयाः, सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद दुःखभाग् भवेत्।। सुभाषित।। ऐसा महान आदर्श रखनेवाला हिन्दु समाज संकीर्णता से ऊपर उठकर जन जन के कल्याण की भावना संजोये रखता है। अपनी इस सुसंस्कृती के कारण ही अपने देश भारत को जगद-गुरु के पद पर पहुंचानें में सक्षम रहा है।

परन्तु आज इसका गुरुत्व सोया हुआ कैसे? पूर्व की संचित शक्ति आज भी विद्यमान है। इसकी अनेकों ही किरणे (वेदवेदान्तसांख्य,न्याय जैन, बौद्ध आदि विभिन्न दर्शन) चारों ही दिशाओं को देदीप्यमान करने की क्षमता रखती है। आज आवश्यकता है इस बढ़ते हुअे भौतिक अन्धकार को चीरने की। हमें इस बात का गर्व है कि वर्तमान में हमारे सन्त, महात्मा, मुनितपोनिष्ट धर्माचार्य इस प्रकाश का लाभ सतत व सर्वत्र पहूंचाने का प्रयास कर रहे है। काल की कराल गति समझें कि राग द्वेष के वशीभूत होकर हमारे मूलभूत दर्शन को अलग अलग द्रष्टि से देखे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाने लगा। एक ही वृक्ष की शाखाओं पर फलोंको खट्टे मीठे तथा विष-अमृत का भ्रम उत्पन्न कर दिया। जो आज के समय में विपरीत ही नहीं बल्कि विनाशकारी सिद्ध हो सकते है। आज आवश्यकता है कि हम अपने कुछ निहित स्वार्थ से ऊपर उठकर स्वस्थ मार्ग को प्रशस्त करें। इसी संदर्भ मे मैंने पूज्य मुनिराज श्री लेखेन्द्रशेखर विजय जी के अभिनन्दन ग्रन्थ में एक श्रद्धा सुमन के रुप में इस उपरोक्त विषय को अर्पित करने का लघुप्रयास किया है।

भारतीय दर्शन इतना व्यापक है कि इसमें नास्तिक-अस्तिक के साथ ही अनेकों ही वाद को स्थान मिल सकता है। सामान्यत: कहीं कहीं विरोधाभास अवश्य द्रष्टि गोचर होगा। जिसे हम एक प्रबुद्ध विचारक या चिन्तक का स्वभाविक गुण समझ सकते है। लेकिन प्राय: मूलत: सिद्धान्तों में किसी न किसी रूप में एक्य भाव देख सकते है। चार्वाक दर्शन सम्मान का स्थान न पाने के कारण ही सुशिक्षित चार्वाक के रुप में उभर कर सामने आना हुआ। यहां शेष सिद्धान्त के साथ जैन दर्शन को लेकर एक तुलनात्मक अध्ययन पर ही प्रकाश डालेगें।

अपने विषय के प्रारम्भ से पूर्व मुनि सुशीलकुमार के विचारों पर प्रकाश डालना प्रासंगिक समझता हूं। इन्होंने अपनी जैन हिन्दू-एक सामाजिक दृष्टिकोण ''पुस्तक में जिज्ञासा'' उल्लेख किया है, साथ ही भारतीय संस्कृति और अपने आपको हिन्दू होने का जो प्रमाण प्रस्तुत किया है, युक्ति संगत है। उसमें भारतीय दर्शन और जैन दर्शन का समन्वय रुप उभर कर आता है, वे कुछ बिन्दु इस प्रकार से है। देवमूर्ति का सम्मान करता हूं, पूर्वजन्म को स्वीकार करता हूं, उससे मुक्त होने के प्रति सचेष्ट हूं, सब जीवों के अनुकूल बर्ताव को ग्रहण करता हूं, अहिंसा को धर्मभूत में मानता हूं, तथा गो सेवा में निष्ठा रखता हूं, इत्यादि।
स्वामी कर पात्रीजी ने लिखा है
गोपु भक्ति र्म वे थस्य, प्रणवे च द्रढा मति:।
पुनर्जन्मानि विश्वास: सर्वे हिन्दू रितिस्मृत:।।
गोमाता एवं ओंकार में जिसकी भक्ति होत तथा पूर्वजन्म में विश्वास हो वह हिन्दू है।

पुस्तक अष्टाचार्य गौरव गंगा, लेखक मुनिज्ञान, के पृष्ठ ८६-८७, सन्त श्री लालजी अपने प्रभाव से मुसलमानों द्वारा रेवाड़ी में गायें कटवानी बन्द करवा दी तथा गुड़ गांव में तीनहजार गायें कटवानें से बचाली। इस प्रकार जैन दर्शन की पृष्ठ भूमी में विविध भारतीय प्राचीन दर्शन की झलक स्पष्ट दिखाई देती है। जैन मंदिरों में ब्राह्मण का पुजारी होना, पूजाकी विधि वैष्णव पद्धति के अनुसार, गणेशपूजा, शुभकार्य में स्वस्तिक, ओंकार का महत्त्व, जैनाचार्य महासेना सूरिका ''सिया चरित्र'' ग्रन्थ व आचार्य श्रीतुलसी के खण्ड काव्य की निम्न पंक्तियांओं जय सितामाता, तेरे बिन न कोई जरादाबे त्राता। ओं जय सितामाता।। जै. हिन्दू।। कविवार श्रीमान् सूर्य मुनिजी महाराज द्वारा रचित जैन रामायण में श्री हनुमानजी का यशोगान उल्लेखनीय है। जैनाचार्य श्री हरिभद्रसूरी जो एक ब्राह्मण परिवार से थे। भीनमाल में कई विदेशियों को जैन अथवा हिन्दू समाज में दीक्षित करने का प्रशंसनीय कार्य का उल्लेख मिलता है।। राज इति. प्र.भा. द्वि.सं.ले.डा. गोपीनाथशर्मा पृ.२६।। इसके मूलमें जो कि भारतीय या हिन्दू दर्शन है, इसे भिन्न मानना संकीर्णता ही नहीं बल्कि हमारी नैतिक व ऐतिहासिक भुल होगी। क्योंकि हमारे चौबीस तीर्थंकर का अवतरण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी भारत देश और हिन्दू समाज में हुआ है। अनेक आचार्य भी चार वर्ण व्यवस्था की शाखाओं में से आकर ही जैन दर्शन का प्रतिपादन किया है। प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभ देव का उपाख्यानन भागवत के पंचम स्कन्द में मिलता है। मुण्डकोपनिषद के चतुर्थ अनुबढक में वेदोंमें ऋषभ (श्रेष्ठ या प्रधान) और सर्वरुप लिखा है-यशछन्द सा-मृषभो विश्वरुपा।।१।। जबात्पु पनिषद में जीव ही पशु है-उसका पति '' पशुपति'' है। शब्दार्थ के रुप में ऋषभ=सांड भी आता है। इसके देव को भगवान पशुपति के रुप में शृद्धाकी प्राचीन परम्परा चली आ रही है।

हमारे भारतीय समाज की यह विशेषता रही है कि इसमें चिन्तन की भिन्नता सदैव से चली आ रही है। भारत में जितने दर्शन है उतने संभवतया इससे बाहर नहीं है। यहां वेदान्त मीमांसा, योग, सांख्य, न्याय और वैशेषिक इन बड़दर्शन के अतिरिक्त चार्वाक, जैन और बौद्ध ये सभी भारतीय दर्शन के अन्तर्गत है। इनमें चार्वाक के अतिरिक्त दर्शन में प्राय: अणुपरमाणुवाद, कर्मवाद और पूर्वजन्म का विवेचन अधिकतर समानता लिये हुए ही है। इन पर पाठकों की जानकारी के लिये यहां संक्षिप्त रुप से प्रकाश डाल देना उचित समझता हूं।

आत्मा के सम्बन्ध में जैन दर्शन ने स्पष्ट किया है कि यह बन्धन से मुक्त होने पर अनन्तज्ञान और सर्वज्ञ है। प्रसिद्ध जैन दार्शनिक गुणरत्न ने आत्मा को शरीर क्रियाओं का परिचालक कहा है। कठोपनिषद की व्याख्या का संकेत मिलता है - आत्मान रथिनं विद्धि शरीर रथभ वेतु। बुद्धि तु सारथि विद्धि मन: प्रग्रह मेवच।। अ.१ व ३ श्लो. ३।। अर्थात तूं आत्मा को रथी जान, शरीर को रथ बुद्धि को सारथि और मन को लगाम समझ। वहीं स्व संवेद्यो पनिषद आत्मा को मोक्ष और नरक से भिन्न रखा है। आत्म बोधो पनिषद का सिद्धान्त है-एकोऽहम विकलोऽहं निर्मल निर्वाण मूर्ति रेवाहम्। निरवयवो ऽ हम जो हं केवत सन्मात्र सारभूतो ऽ हम्।। द्वि.अ.।६।। अर्थात मैं एक हूं, मैं परिपूर्ण हूं और निर्वाण मूर्ति हूं, मैं अवयवों से रहित हूं, मै अजन्मा हूं और केवलमात्र संन्त स्वरुप में सर्व का सार रुप हूं। चार्वाक के अनुसार ''चैतन्य विशिष्ठ शरीर ही आत्मा है। बौद्ध दर्शन सबसे भिन्न है कि वह अनात्मवाद का ही पक्षधर है। वहीं बौद्ध दर्शन सबसे भिन्न है कि वह अनात्मवाद का ही पक्षधर है। वहीं बौद्ध की महापान शाखा ने पारमार्थिक आत्मा या महात्मा को मिथ्या नहीं माना है। नव्य नैयायिक कहते है कि मन का आत्मा से सम्बन्ध है। अद्वैत वेदान्त के अनुसार आत्मा एक नित्य, स्वप्रकाश चैतन्य है। आत्मा न तो ज्ञाता है न ज्ञेय है न 'अहम्' ही है। विशिष्टाद्वैत-वैदान्तब्दे अनुसार ''ज्ञाता अहमर्थ एवात्मा'' इसे ज्ञाता और अहम् कह सकते है, ऐसा कहा है। वैशेषिक दर्शन ने आत्मा को नित्य और सर्वव्यापि द्रव्य जिसे चैतन्य का आधार माना है। इसे जिवात्मा और परमात्मा, दो स्वरुप किये है। भिन्न भिन्न शरीर में भिन्न भिन्न जीवात्मा कहा है। सांख्य का एक तत्व प्रकृति दूसरा तत्व पुरुष (आत्मा)। आत्मा का अस्तित्वनिर्विवाद कहा है। योग की द्रष्टि से जब चित्र किसी वृत्ति में परिणत हो जाती है तब उस पर आत्मा का प्रकाश पड़ता है और वह आत्मसात् हो जाता है। इसलिये ऐसा भासित होता है कि पुरुष (आत्मा) ही सब कुछ सोचता है और करता है। भारतीय दर्शन के अनेक मतमतान्तर में आत्मा के सम्बन्ध में फिर जैन दर्शन पर आते है। जहां आत्मा का माप शरीर कें बराबर कहा

जिस जीव की धर्म के प्रति सची भावना हैं उसे धर्म-चर्चा में आनंद ही आनंद दिखाई देता हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। जीवात्मा और सिद्धात्मा के दो भेद बताये है। चैतन्य द्रव्य को जीवया आत्मा कहते है जो सब समय वर्तमान रहता है। सिद्धात्माओं का स्थान सबसे ऊंचा है। सिद्ध वे है जो कर्मोपर विजयपात्मेते है और पूर्णज्ञानी हो जाते है।

अब हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि भारतीय दर्शन के अन्तर्गत आत्मा का सिद्धान्त चार्वाक, बौद्ध महायात शाखा वैशेषिक दर्शन और अद्वैत वेदान्त का सिद्धान्त जैन दर्शन में किसी न किसी रुप में सामंजस्य द्रष्टि गोचर होता है।

अगला बिन्दु "बन्धन" है। भारत के प्रायः सभी दर्शनों के अनुसार बन्धन का अर्थ है जन्मग्रहण। जैन मतानुसार जीव को ही बन्धन के दुःख भोगने पड़ते है। जीव अपने कर्मो या संस्कारो के वश ही शरीर धारण करता है पूर्व जन्मो के कारण अर्थात पूर्वजन्म के विचार वचन तथा कर्म के कारण जीव में वासनाओं की उत्पत्ति होती है, वे वासनाएं तृप्त होना चाहती है। फल यह होता है कि ये पुद्गल को अपनी ओर आकृष्ट करती है। जिससे विशेष प्रकार का शरीर बनता है। कर्म के अनुसार यह निश्चित हो जाता है कि किस व्यक्ति का जन्म किस वंश या परिवार में होगा।

क्रोध, मान, माया, लोभ ही हमारी कुप्रवृत्तियां है जो हमें बंधन में डालती है। इन्हें 'कषाय' कहते है। कषायों के कारण कर्मानुसार जीव या पुद्गल के आक्रान्त हो जाना ही बन्धन है। क्यूंकि दूषित मनोभाव ही बन्धन का मुल कारण है।

रामानुज का विशिष्टाद्वैत में आत्मा का बन्धन कर्म का परिणाम है। यद्यपि आत्मा अणुरुप है जो चैतन्यशरीर और इन्द्रियों से बद्ध हो जाता है। यहां जैन और विशिष्टाद्वैत दोनोंमें कर्म की प्रधानता है।

मोक्ष के सम्बन्ध में श्रीरामनुज ने लिखा है कि कर्म और ज्ञान द्वारा भक्तिका उदय होता है जिससे मुक्ति मिलती है। इस प्रकार का निष्काम कर्म पूर्वजन्मार्जित उन संस्कारों को दूर कर देता है जो ज्ञान की प्राप्ति में बाधा स्वरुप होते है। श्रीरामानुज का मानना है कि मुक्ति केवल अध्ययन या तर्क से नही होती कीन्तु ईश्वर की करुणा से होती है। उपनिषदोंने भी कहा है कि ज्ञान से मुक्ति मिलती है। आत्माका परमात्मा में लीन होना इसका तात्पर्य यही होना चाहिये कि प्रज्ञा की प्राप्ति ही जन्म-मरण के चक्र से मुक्त होना है। नैयायिकों के अनुसार मोक्ष दुःखके पूर्ण निरोध की अवस्था है। मोक्षपाने के लिये धर्मग्रन्थों के मनन के द्वारा, निदिध्यासन (योग) के द्वारा आत्मा का निरन्तर ध्यान करना चाहिये। संचित कर्म भोग लेने पर फिर वह जन्मग्रहण के चक्र में नहीं पड़ता। यह पुनर्जन्म का अन्त ही बन्धनों और दुःखों का अन्त है। यही मोक्ष या अपवर्ग है। सांख्यका मत है कि यदि किसी जीव के लिये दुःख क्लेशों से प्राण पाना संभव भी हो तो जरा और मृत्यु से छुटकारा पाना असंभव है। आध्यात्मिक, आदि भौतिक, और अधि दैविक इन तीनों दुःखों से एक बारगी छुटकारा पाना असंभव है। सुखवाद का आदर्श त्यागकर युक्ति संगत ध्येय दुःखो से निवृत्ति से सन्तोष करें। सभी दुःखोंका सदा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के लिये निवारण जिसकी पुनरावृत्ति नहीं हो सके यही मुक्ति, अपवर्ग या पुरुषार्थ है।

वेदान्त कहता है- ''अहंब्रहतास्मि'' इससे जीव और ब्रह्म का मिथ्या भेद हट जाता है। तब बन्धन कटकर मोक्ष का साक्षात अनुभव होता है। इसके सिद्धान्त में विशेषता यह है कि मोक्ष के बाद भी शरीर रह सकता है। क्योंकि यह प्रारब्ध कर्मों का फल है। परन्तु मुक्तात्मा पुन: कभी अपने को वह शरीर नहीं समझता। संसार के मिथ्या प्रपंच में वह फिर ठगा नहीं जाता। शंकरका परवर्ती वेदान्त साहित्य में 'जीवन मुक्ति' के नाम से विख्यात है। भारतीय दर्शन की समानता में यह भी है कि तत्त्वज्ञान के अभाव में बन्धन और दु:ख होता है। आत्माका तत्व ज्ञान हो जाने पर मुक्ति या सुख की प्राप्ति होती है। इसीलिये निदिध्यासन और आत्म संयम की आवश्यकता बतलाई है।

अब हम जैन दर्शन की मान्यता की और ध्यान देते है। इन का कहना है कि जीव और पुद्‌गल के संजोग को बन्धन कहते है और इनका वियोग होता हि मोक्ष है। पुद्‌गल का वियोग तब ही होता है जब नये पुद्‌गल का आस्रव बन्द हो और जो जीव में पहले से ही प्रवीष्ट है वह जीर्ण हो जाय। पहले को संवर और दूसरे को निर्जर कहा है। जीव में पुद्‌गल का आस्रव जीव के अन्तर्निहित कषायों के कारण होता है। इन कषायों का कारण अज्ञान है। अज्ञान का नाश, ज्ञान, की प्राप्ति से हो सकता है। इसके लिये सम्यग्‌ज्ञान या तत्त्वज्ञान का अधिक महत्व है। जो पूर्णज्ञान तीर्थंकरो या अन्यमुक्त महात्माओं के उपदेश के मनन से होता है। इनके उपदेश इसलिये लाभदायक होते है कि वे स्वयं मोक्ष पाकर उपदेश देते है।त्रिरत्न का महत्व समझना आवश्यक है। तत्वार्थोधिगम सूत्रमें ही उमास्वामी ने कहा है - ''सम्यग्‌दर्शन ज्ञान चरित्राणी मोक्ष मार्ग:।'' जैन दर्शन में यह विशेषता है कि सम्यग्‌ज्ञान का अर्थ-यथार्थ ज्ञान के प्रति श्रद्धा होना है। परन्तु तीर्थंकरों के उपदेश का आंख मुंद कर मान लेना नहीं है। मणिभद्र कहते है-जैन दर्शन युक्ति हीन नहीं वरं युक्तिप्रधान है। उनका कहना है कि न मेरा महावीर के प्रति कोई पक्ष पात है और न कपिल या अन्य दार्शनिकों के प्रति द्वेष। मैं युक्ति संगत वचन को मानता हूं। नये कर्मों को रोकने व पुराने कर्मों को नष्ट करने के लिये जैन में पंचमहाव्रत के पालन का विधान है। सतर्कता (संयम) का अवलम्बन, मनवचन तथा कर्म में गुप्ति या संयम का अभ्यास, दसप्रकार के (क्षमा, मार्दक, आर्जष, सत्य, शौच, सयंम, तप, त्याग, अकिंचन और ब्राह्मचर्य) धर्मोंका आचरण। जीव और संसार के यथार्थ तत्व के सम्बन्ध में भावना रखनी चाहिये। जीव और संसार के यथार्थ तत्व के सम्बन्ध में भावना रखनी चाहिये। भूख प्यास शीत उष्ण के कष्ट या उद्वेग को सहना। समता, निर्मलता, निर्लोभिता और सचारित्रता प्राप्त करनी। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदि का पालन से नये कर्म से मुक्त होना है। जीव और पुद्‌गल का संयोग छूट जाता है।

निष्कर्ष के रुप में त्रिरत्न व पंच महाव्रत और जो सनातन धर्म व हिन्दु दर्शन में धर्म के निम्न लक्षण है —

सत्यं दानं तथा शौचं, सन्तोषो ही: क्षमारजयम्।
ज्ञानं शमो दया ध्यानं, मेषां धर्म सनातन:।।

 विद्या और शक्ति का सही उपयोग करने से ही संसार-मार्ग कल्याण एवं मंगलकारक होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्यच —

कृति क्षमा दमोड क्षमों ऽ स्तेयं, शौच मिन्द्रिय निग्रह।
धीर विद्या सत्यम क्रोधो, दशकं धर्म लक्षणं।।

अर्थात - सत्य, धैर्य, क्षमा, इन्द्रियों को अपराध प्रवृति से रोकना, चोरी न करना, पवित्रता, इन्द्रियों को साधना में केन्द्रित करना, दुर्व्यसन का त्यागना, अविद्या को मिटाना, क्रोध न करना तथा सन्तोष रखना इत्यादि जो उल्लेख है। इनमें प्राय: परस्पर सिद्धान्त: एकरुपता ही प्रतीत होती है। भारतीय दर्शन (उपनिषद, विशिष्टाद्वैत, न्याय, सांख्य व जैन) में कर्म संचित कर्म का जीर्ण करना, सुखवाद का त्याग, तथा तत्त्वज्ञान की प्राप्ति, इनमें मूल सिद्धान्तों की प्राप्ति में एक मत सा है। हो सकता है इन्हें रुप देने में भिन्नता प्रतीत हो।

मोक्ष प्राप्त पुनर्जन्म से मुक्ति पाना ही है। पूर्वजन्मकी मान्यता ही पुनर्जन्म के सिद्धान्त पर विश्वास उत्पन्न करता है। बौद्ध दर्शन में कर्म के भेद व दूसरे भेद में पुनर्जन्म का उल्लेख किया है। वहीं निर्वाण के प्रथम लाभ में पुनर्जन्म का वर्णन है। न्याय ने कहा है - संचित कर्म भोग लेने पर फिर वह जन्मग्रहण के चक्र में नहीं पडता। यह पुनर्जन्म से मुक्ति ही है। वेदान्त में संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण या संचीयमान ये तीन प्रकार के कर्म है। तत्त्वज्ञान से संचित कर्म का क्षय तथा क्रियमाण कर्म का निवारण होता है। इस प्रकार पूर्वजन्म के बंधन से छुटकारा मिल जाता है जैन दर्शनने भी पुनजन्म को माना है। न्याय और वेदान्त ने संचित कर्म का समर्थन करते हुए लिखा है कि संचित कर्म के कारण जन्म-पुर्नजन्म के चक्र में पड़ने से अनेक शरीर धारण करना पड़ता है। प्राय: समस्त भारतीय दर्शन में सामंजस्यता किसी न किसी रुप में विद्यमान है।

अणु-परमाणुवाद के रुप में भी ऐसा ही विवेचन है। कठोपनिषद में आत्मा का निवास अणु से भी अणुतर और महान से भी महत्ता बतलाया है। न्याय वैशेषिक के अनुसार मन को अणु कहा है। जड़जगत को चार प्रकार के परमाणुओं से बना हुआ कहा है। परमाणु नित्य एवं अपरिवर्तन शीत होते है। वैशेषिक की दृष्टि से संसार के सभी कार्य द्रव्य चार प्रकार के परमाणुओं (पृथ्वी, जल, तेज और वायु) से बनते है। इसी लिये वैशेषिक मत को परमाणु बाद (Atomism) भी कहते है। कणाद का परमाणुवाद पाश्चात्य से भिन्न है। दो परमाणुओ का प्रथम संयोग "द्रयणुक" है। तीन द्रयणुक का संयोग त्र्युणुक या त्रसरेणु कहलाता है। परमाणुओं की गति या कर्म के फलस्वरुप उनके संयोग होते है। जैन दर्शन - पुद्‌गल के सबसे छोटे भाग को जिसका और विभाग नहीं हो सकता उसे अणु कहता है। यहां न्याय वैशेषिक का परमाणु से जड़जगत का सम्बन्ध पुद्‌गल के अणु से मिलता जुलता है। द्रयणुक का वह भाग जो सूक्ष्माति सूक्ष्म है, जिसका भाग होना संभव नहीं है।

भारतीय दर्शन में जैन काल भी अति प्राचिन है। इसमें रुपान्तर या सम्प्रदाय भेद समयानुसार होता रहा है। एक दूसरे दर्शन के विचार लेना या छोड़ना अथवा नये ढ़ंग से प्रतिपादन करने की प्रंपरा का क्रम चलता आ रहा है। यह विशेषता प्राय: यहां के सभी दर्शन में देखने को मिलेगी। इतना भी निश्चय है कि धर्म में विज्ञान का समावेष भी देखने को मिलता है। जैन धर्म में भी जीओ और जीने दो के लिये पंच महाव्रत का पालन सहायक है। सन्यासोपनिषद्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में चित्रशुद्धि व आशा ईर्ष्या तथा अहंकार को त्यागने वाला सन्यासी है। आहार के लिये सम्यक चरित्र में भिक्षा आदि ग्रहण करने में जो सीमित सतर्कता का उदाहरण है। उसी द्रष्टि से 'भिक्षुकोपनिषद' में आठग्रास भोजन का विधान है। गीता ६ अ.१७ वां श्लो. में लिखा है - युक्राहार विहारस्य, युक्त चेष्टसय कर्मसु। युक्त स्वप्ना व बोधस्य, योगोभवति दुःस्वहा।। अर्थात दुःखो का नाशकरने वाला योग युक्तिपुर्वक आहार-विहार करना, कर्मों में यथा योग्य चेष्टा तथा यथा योग्यशयन व जागने वाला ही सिद्ध होता है।

जानामि धर्म न च मे प्रवृति, जानाम्य धर्म न च मे निवृति।। पंचदशी ६.१७६।। तृष्णाओं तथा नीच प्रवृतियों में रहना धर्म नहीं। उनकी निवृत्ति ही धर्म है। साधारणत: हमारे कर्म राग द्वेष से उत्पन्न होते है। हमारी ज्ञानेन्द्रिय इन्हीं के अनुसार कार्य कहती है। पंचयम - अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य और लोभ न करना। पंचनियम-पवित्रता, सन्तोष तय, स्वाध्यय, तथा प्रणिघात। ये भारतीय दर्शन में जैन दर्शन की एक रुपता का द्योतक है।

इस लेख की इति श्री से पूर्व जैन दर्शन का स्यादवाद की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता। क्योंकि स्यादवाद में उदारता दिखाई देती है। वे अन्यान्य दार्शनिक विचारोंको नगण्य नहीं समझते या किसी दर्शन की हठोक्ति को नहीं मानते कि केवल उसी के विचार सत्य है। ऐसी हठोक्ति में एकान्त वाद का दोष रहता है। इसलिये दृष्टि का साम्य होना आवश्यक है। अनेक मतों के प्रति समादरभाव के कारण अनेकांत वाद तथा स्यादवाद है। अनेकांतवाद के अनुसार वस्तु में अनेक प्रकार के धर्म पाए जाते हैं। स्यादवाद के अनुसार कोई भी विचार निरपेक्ष्य सत्य नहीं होता। एक ही वस्तुके सम्बन्ध में दृष्टि अवस्थी आदि भेदोंके कारण भिन्नभिन्न विचार सत्य हो सकते है।

दर्शन विषय के इस विशीलतम मंथनामृतमें से समय और शक्ति के अनुसार यद किन्चित अंश के रुप में यहां प्रस्तुत करने का यथा संभव प्रयास किया है।

वैद्य मुरलीधर श्रीमाली "साधक"
नगरपरिषद भण्डार के पास, राजनेर रोड
वीकानेर (राजस्थान)
- ३३४००१

● अपने आप सम्मान सहिक सन्मार्ग पर जो आता है उसके अंत:करण में आत्मकल्याण, आत्मदर्शन और आत्मवैभव का प्रकाश प्रस्फुटित हो अद्वितीय उज्ज्वलता प्रदान करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org